डॉ. बिभा कुमारी

हिंदी विभाग, विश्वेश्वर सिंह जनता महाविद्यालय

हिंदी प्रतिष्ठा तृतीय वर्ष के छात्रों हेतु अध्ययन सामग्री - अष्टम पत्र

ध्वनि – सिद्धांत : परिचय

ध्वनि – सिद्धांत के आचार्य आनंदवर्धन हुए। काव्य के आत्मतत्व की घोषणा 'ध्वनि' के रूप में करते हुए उन्होंने सर्वप्रथम काव्य के इस अभिनव – सिद्धांत की प्रतिष्ठा की। उन्होंने सर्वप्रथम ध्वनि – सिद्धांत को व्यवस्थित रूप में विवेचित करने और उसे प्रकाश में लाने का कठिन उपक्रम किया। यद्यपि आनंदवर्धन से पूर्व भी अचार्यों ने ध्वनि – सिद्धांत को परंपरागत रूप में स्वीकार तो किया था, परंतु उसे क्रमबद्धता प्रदान नहीं कर पाए थे।

काव्यशास्त्र के प्राचीन अचार्यों ने ध्वनि का कहीं प्रत्यक्ष रूप से उल्लेख नहीं किया है।

आचार्य आनंदवर्धन ने अपने ग्रंथ 'ध्वन्यालोक' में सर्वप्रथम ध्वनि – सिद्धांत को व्यवस्थित और क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया। ध्वन्यालोक ग्रंथ के दो प्रमुख प्रतिपाद्य विषय हैं – पहला ध्वनि – सिद्धांत की स्थापना करना और दूसरा ध्वनि के साथ रस, अलंकार, रीति, गुण तथा दोष विषय विद्यमान विचारों की तुलना करते हुए उनके परस्पर संबंधों का विवेचन करना तथा उनके संश्लेषण से काव्य – विद्या के एक पूर्ण तथा व्यवस्थित सिद्धांत का विकास करना।

ध्वनि – सिद्धांत वस्तुतः अभिव्यक्ति सिद्धांत पर आधारित है। इसमें सर्वप्रथम शब्दशक्ति तथा शब्द के अर्थ के विषय में व्याकरणात्मक तथा दार्शनिक समस्याओं का विवेचन है। आनंदवर्धन के समकालीन लगभग सभी आचार्यों ने नियमपूर्वक शब्द की प्रथम दो शक्तियों अभिधा तथा लक्षणा को ही स्वीकार किया है, किंतु तात्पर्य को पृथक शक्ति के रूप में स्वीकार करने के लिए एकमत नहीं हो सके हैं। कुछ विद्वानों ने तात्पर्य को व्यंजना में समाहित कर लिया है। ध्वनि सिद्धांत मुख्यतः शब्द की इसी तृतीय शक्ति पर आधारित है। आनंदवर्धन ने काव्य में दो प्रकार के अर्थों को स्वीकार किया – प्रथम वाच्य और दूसरा प्रतीयमान। कवियों को विशेष रूप से प्रतीयमान अर्थ पर ही बल देना चाहिए, क्योंकि वही काव्य में मुख्य है और वही प्रत्येक महाकवि के काव्य में पाया जाता है।

काव्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए ध्वनिकार आनंदवर्धन ने बताया है कि सुंदर एवं उचित ढंग से सन्निवेशित अंग – प्रत्यंगों की रचना से विशिष्ट काव्य का शरीर शब्दमय है। ध्वनिकार आनंदवर्धन ने काव्य की आत्मा शब्द को न मानकर अर्थ को माना है।

आचार्य आनंदवर्धन ने प्रतीयमान अर्थ को विशेष महत्व दिया है। काव्य का सारभूत प्रतीयमान अर्थ वाच्यार्थ से भिन्न होता है, प्रतीयमान अर्थ महाकवियों की रचनाओं में पाया जाता है। काव्य में प्रतीयमान अर्थ शब्दमय काव्यशरीर से पृथक झलकता रहता है। इस अर्थ को केवल सहृदय ही समझ सकते हैं। वाच्यार्थ से प्रतीयमान अर्थ की स्थिति भिन्न होती है।

“प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्तवस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।”

व्यंग्यार्थ के तीनों रूप वस्तुरूप व्यंग्यार्थ, अलंकार रूप व्यंग्यार्थ तथा रसरूप व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से भिन्न होते हैं। विभावादि के प्रतिपादन से विशिष्ट काव्य ही रस की प्रतीति कराने में समर्थ होते हैं। अन्वय – व्यतिरेक से देखा गया है कि रस की प्रतीति कराने में समर्थ होते हैं। अन्वय – व्यतिरेक से देखा गया है कि रस की प्रतीति कराने के लिए विभावादिकों का वर्णन परमावश्यक है।

वाच्यार्थ के रूप में रस की प्रतीति कथमपि संभव नहीं है। रस सर्वदा व्यंग्य रहता है। ध्वनि का तीसरा भेद रसध्वनि भी वाच्यार्थ से भिन्न होता है।

वस्तुतः प्रतीयमान अर्थ ही जिसे हम व्यंग्यार्थ भी कहते हैं, काव्य की आत्मा है। आदिकवि वाल्मीकि का क्रौंचद्वंद्व के वियोग से जो शोक उत्पन्न हुआ, वही श्लोक रूप में परिणत हो गया। वह शोकरूपी व्यंग्यार्थ ही रस है।

ध्वनिकार आनंदवर्धन ने ध्वनिसिद्धान्त की प्रतिष्ठा की है और उसके स्वरूप का विस्तार से विवेचन भी किया है। ध्वनि – सिद्धांत की प्रतिष्ठा द्वारा उन्हें प्रभूत यश की उपलब्धि हुई है।